27

रस परिचय

प्रिय छात्रों! इस पाठ में रस के विषय में आलोचना है। हमारे द्वारा प्रथम पाठ से आरम्भ करके विविध काव्यों का अध्ययन किया गया। उसी प्रकार हमारे द्वारा छन्द अलंकार आदि का परिचय भी प्राप्त किया। उनके बाद अब रस का परिचय प्राप्त करना चाहिए।

साहित्यशास्त्र के काव्यों में रस सबसे प्रधान है। शब्द, अर्थ, अलंकारादि रस रूप से ही काव्य व्यवस्थित होता है। यहाँ रस के विषय में विभिन्न मतों को संक्षेप में प्रदर्शन करते हैं। इसके अध्ययन से काव्यप्रकाश-रसगंगाधर आदि के अध्ययन में बहुत सहायता होगी। यहाँ अत्यन्त प्रधान स्थलों में प्राचीन ग्रन्थों के श्लोकों को उद्धृत करेंगे। सरल वाक्यों से प्राचीन ग्रन्थों के तात्पर्य प्रतिपाद्य है जिसने साहित्यशास्त्र से इतर शास्त्रों का छात्रों को सरलता से बोध हो सके।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़कर आप समक्ष होंगे :

- प्रधान विषय रस को जान पाने में;
- रस सूत्र, रस का समन्वय और रसानुभव के स्वरूप समझ पाने में;
- रसानुभव स्वरूप में काव्य के लोकोत्तर साधारणीकरण सिद्धान्त समझ पाने में;
- उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद और अभिव्यक्तिवाद को समझ पाने में;
- करुण की आनन्दमय सिद्धि, रसों का अनुक्रम, शान्त रस की महिमा को जान पाने में और;
- इस सिद्धान्त का समग्र परिचय सिद्ध कर पाने में अध्ययन।

भूमिका

विद्वानों का अभिप्राय है कि काव्य या काव्यशास्त्र का परम फल रस होता है। रस का स्वरूप आनन्द ही है। सब प्राणियों के सब कार्य आनन्द या सुख में ही व्यवस्थित होते हैं। वैसे ही काव्य के सभी विषय रस में व्यवस्थित होते हैं। रस सभी में व्यवस्थित होता है, फिर अपनी पूर्णता के लिए अन्यत्र नहीं प्रवृत होते हैं। यह रस ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। दुग्ध से दहि, दहि से मक्खन, मक्खन से घृत, घृत से आगे कुछ नहीं होता है। अर्थात् दुग्धादि का अत्यन्तसार रूप घृत होता है उसी प्रकार काव्य में रस शब्दार्थादि सभी का सार भूत होता है। रस के प्रकाशन के लिए कवि काव्यों की रचना करते है। उसके अनुभव के लिए सहृदय जन काव्य में अनुरक्त होते हैं। जैसा कि भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है - ''नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'' उसमें न केवल काव्य में अपितु गीतनृत्यादि सभी कलाओं में रस ही आत्मा है। यह साररूप समझना चाहिए। ''रस्यते इति रसः।'' उससे आनन्दमयी स्वाद को रस जानना चाहिए। इस रस का प्रथम निरूपण भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस के विषय को विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। उक्त विषय को आधार करके परवर्ती आलंकारिकों ने रस का निरुपण किया है। नाट्यशास्त्र की प्रसिद्ध और प्रामाणिक व्याख्या अभिनवभारती है। उसके रचयिता अभिनवगुप्त है।

रससूत्र का निरुपण

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'' यह रससूत्र नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में है। काव्य या नाटक से उपस्थापित राम सीतादि या समुद्रपर्वतमेघादि विभाव कहे जाते है। वह विभाव सहृदयों के हृदय में रति शोक आदि भावों को अलौकिक रूप से प्रबोधित करता है। इसलिए उसका विभाव नाम है। विभाव में विद्यमान कटाक्ष प्रसार, स्मित-भाषणादि चेष्टाविशेष अनुभाव कहे जाते हैं। उस अनुभाव से रामसीता आदि में विद्यमान दर्शन भाषण आदि क्रिया अनुभाव है। व्यभिचारी अर्थात् परिवर्तन या अस्थिर। व्यभिचारिभाव ही एक रसानुभव के मध्य में आते है और कुछ क्षण बाद चले जाते है। ये मानसिक भाव अस्थिर होते हैं। वे लज्जा संशय कुतुहलादि व्याभिचारिभाव है।

27.2.1 समन्वय

काव्य या नाट्य से उपस्थापित राम सीता आदि विभाव होते हैं। उनमें स्मित दर्शन संभाषणादि क्रियाओं का वर्णन होता है। उनके लज्जा हास संशय आदि व्यभिचारिभाव होते हैं। इस प्रकार रामसीता आदि लज्जा हास कुतुहलादि से युक्त और स्मित-दर्शन-भाषणादि क्रिया युक्त काव्य या नाटक से उपस्थिापित किये जाते हैं। इस प्रकार विभावादि का समुचित संयोग होने पर सहृदयों के हृदय में जो अलौकिक आनन्द अभिव्यक्त होता है वह रस है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 27.1

1. काव्य की आत्मा कौन है?
2. विभाव कौन है?
3. रससूत्र नाट्यशास्त्र के किस अध्याय में है?
4. किसके प्रकाशन के लिए कवि काव्य की रचना करते हैं?

27.3 रसानुभव का स्वरूप

रससूत्र में विभावादि के संयोग में रस निष्पन्न होता है यह देखा। वहाँ रस किसमें रहता है इस विषय में जिज्ञासा होती है तब आलंकारिक कहते हैं।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः। काव्यप्रकाश 3/2

विभावानुभावव्यभिचारिभावों द्वारा अभिव्यक्त सहृदयों में विद्यमान रतिशोकादि स्थायी भाव ही रस होता है। सहृदय के मन में वासनारूप से अनेक भाव हैं। वे रति हास शोकादि है। वे रसत्व प्राप्ति पर्यन्त स्थिर होते हैं। अतः वे स्थायीभाव कहे जाते हैं। वे नौ हैं –

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधेत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥ साहित्यदर्पण 1/175

इस श्लोक में ये नौ स्थायीभाव हैं – रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और भय।

अभिष्ट विषय में मन के अनुराग से उत्पन्न प्रमोद ही रति है, वाणी के विकार से उत्पन्न चित्त के विकास को हास कहते हैं, इष्ट नाश के कारण उत्पन्न मन का दुःख विशेष शोक है। इच्छाभंग प्रतिकूल होने में उत्पन्न मन का तीक्ष्ण गुण ही क्रोध है। कार्यारम्भ आदि में उत्कट आवेश का नाम उत्साह है। व्याघ्रादि के दर्शन से अत्यन्त अनर्थ विषयक चित्त की दुर्बलता भय है। दोषादि दुर्विषय के दर्शन से उत्पन्न हेय बुद्धि जुगुप्सा है। लोकातीत अपूर्व दृष्ट विषयों में आश्चर्यरूपी चित्त का विस्तार विस्मय होता है। सम्पूर्ण बाह्य जगत के अभाव में उत्पन्न अपने विश्राम सुख को शम कहते हैं।

इन भावों का अनिश्चयात्मक ज्ञान संशय होता है। जैसे 'स्थाणु वा पुरुषो वा।' यहाँ यह वस्तु स्थाणु है या पुरुष है यह ग्रहण होना संशय है।

लौकिक जीवन सुख और दुःखात्मक होता है। उनको ही काव्यमार्ग से अनुभाव लोकोत्तर होकर परमास्वादरूपी रस होता है। उन भावों का अनुभव काव्य में कैसे अलौकिक होता है। इस संदेह का समाधान किया जाता है कि प्रथम – उनका लोक जीवन में अनुभव कैसे लौकिक प्रदर्शित होते हैं। लौकिक जीवन में सभी विषय मेरे अथवा मेरे नहीं है। इस प्रकार दो प्रकार की बुद्धि

से ग्रहण किये जाते हैं। यह वस्तु मेरी है, यह वस्तु मेरी नहीं है, यह वस्तु अन्य की है, यह वस्तु अन्य की नहीं है, इस प्रकार ग्रहण होते हैं। सभी जगह अपना और दूसरे के सम्बन्ध को स्वीकार या परिहार देखा जाता है। इस प्रकार जो कुछ वस्तु ग्रहण की जाती है उस वस्तु का ज्ञान या अनुभव लौकिक कहा जाता है। लौकिक अनुभव चार प्रकार के ज्ञान से होते हैं, उसे आलंकारिक कहते हैं। वे सम्यक् ज्ञान, मिथ्याज्ञान, संशयज्ञान और सादृश्य ज्ञान ये चार ज्ञान होते हैं। ये लोक में व्यवहार के साधन होते हैं।

1. **सम्यक् ज्ञानम्** - रामोऽयम् वृक्षोऽयम् इत्यादि ज्ञान यथार्थज्ञान कहा जाता है, वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से लब्ध होता है।

2. **मिथ्याज्ञान** - यह भ्रमात्मक ज्ञान होता है। जैसे मन्द अन्धकार में स्थित रस्सी को देखकर उसके स्थान पर सर्प की प्रतीति मिथ्या ज्ञान है। स्थाणु को देखकर पुरुष का प्रतीति होती है। इस प्रकार अन्यथा ग्रहण को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

3. **संशय ज्ञान** - विषय को अनिश्चयात्मक ज्ञान होता है वह संशय है। जैसे स्थाणुर्वा पुरूषो वा - यह पुरूष या स्थाणु? ऐसा ग्रहण होने पर अनिश्चय होता है। इस अनिश्चय ज्ञान को ही संशय कहते हैं।

4. **सादृश्यज्ञान** - पूर्व ज्ञात पदार्थ के सादृश्य के बल से अज्ञात विषय में जो ज्ञान होता है उसे सादृश्य ज्ञान कहते है। जैसे- ''गौः इव गवयः'' गाय को जानने वाला पुरूष न जानने वाला पुरूष को किसी पूर्व अदृष्ट नीलगाय को सादृश्य बल से समझता है। यह सादृश्य ज्ञान है।

इन ज्ञानों से सभी व्यवहार संभव होते हैं। किन्तु काव्य के पदार्थों का ग्रहण इन ज्ञानों से नहीं होता। चित्रतुरग न्याय से काव्य का ग्रहण होता है। चित्र में लिखित अश्व न यथार्थ है, ना ही अश्व से भिन्न है और न ही अश्वसदृश है, न अश्व है अथवा उससे भिन्न है यह प्रतीयमान है। किन्तु यह अश्व है। यह ज्ञान होता है। इस प्रकार के ज्ञान को आहार्यज्ञान कहते हैं। किसी प्रयोजन के कारण औचित्य से इसमें वह बुद्धि हो तो वह आहार्यज्ञान होता है। वह ज्ञान विवेकपूर्वक होता है न कि रज्जुसर्प ज्ञान के समान। रस्सी में जो सर्पज्ञान होता है वह यथार्थ का ग्रहण नहीं है। आहार्य ज्ञान में तो यथार्थज्ञान होने पर भी अन्यप्रयोजन सिद्धि के लिए यह नहीं है। ऐसा ज्ञान विवेकपूर्वक होता है। जैसे एक वन में एक सिंह था। वह वनराज होना चाहता था। उसके लिए प्राणियों के विश्वास को प्राप्त करने के लिए एक सभा का आयोजन किया। वहाँ सिंह वनराज पद नहीं चाहता तो प्राणियों की सभा भी नहीं आयोजित की, क्योंकि सिंह कोई प्राणी है न कि विवेकी मनुष्य। मनुष्य जो कार्य करता है वह मृग आदि नहीं करते। यह यथार्थ हमारे द्वारा जाना जाता है। फिर भी सिंह के समान व्यवहार स्वीकार किया जाता है और आहार्यज्ञान के बल से ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार से ही आहार्यज्ञान से पंचतन्त्रादि कथाओं में विस्तार से नीतिबोध सिद्ध होता है। अतः काव्य के पदार्थों अथवा विभाव आदि आहार्य ज्ञान से विभावादी की अलौकिकता सिद्ध होती है।

27.4 साधारणीकरण

विभावादि के विषय में और स्वयं के विषय में सहृदय के देशकालादि सम्बन्ध स्वकीय परकीय स्वरूप के सम्बन्ध के स्वीकार और परिहार का अभाव साधारणीकरण होता है। अतः साधारण विभावादि ये मेरे, ये मेरे नहीं, ये पर के, ये पर के नहीं है, इस प्रकार के स्वयं के सम्बन्ध और पर के सम्बन्ध के बिना ही जाने जाते है। देश-काल स्वकीय परकीय आदि सम्बन्ध लोक में पदार्थों के आवरण रूप से रहते है। उस प्रकार का आवरण जब दिखाई नहीं देता तब पदार्थ साधारण होता है। सम्बन्धावरण होता है तो असाधारण ही होता है। असाधरण विशेषरूप परिमित है। लोक में प्रायः सभी पदार्थ असाधरण ही प्रतीत होते हैं। इससे एक पुरुष से सम्बद्ध पदार्थ अन्य द्वारा अनुभव करने व आस्वादित करने योग्य नहीं होते और न ही एक की पत्नी अन्य द्वारा देखी जाती है। इस प्रकार सभी पदार्थ सम्बन्धवरण से सहित और विशेष होते हैं।

काव्य में विभावादि विशेष धर्म के बिना ही प्रतीत होते है अर्थात् साधारण ही प्रकाशित होते हैं। अतः उनमें किसी का सम्बन्ध नहीं होता। सम्बन्धरूप आवरण टूट जाता है। अतएव काव्य में सभी विभावादि पति, पत्नी पुत्रादि रूप सभी के द्वारा देखने और आस्वादित करने के लिए समर्थ होते हैं। श्रीकृष्ण राधादि का चुम्बन आलिंगनादि भी सभी के देखने योग्य होता है। किन्तु जीवन में कदापि नहीं होता। अतः आलंकारिक कहते हैं - विभावादि की साधारणतया प्रतीति अलौकिक प्रतीति है। विभावादि के विषय में आहार्यज्ञान है, उससे साधारणीकरण और सहृदयतत्व महिमा सिद्ध होती है। विभावादि जब साधारणतया प्रतीत होते हैं। तब सहृदयों के हृदय विभावादि में तन्मय होता है। जब चित्त में सत्त्वगुण व्याप्त होता है रजोगुण और तमोगुण नीचे जाते हैं। उससे चित्त का मलरूप अज्ञान तत्काल निवृत हो जाता है। शुद्ध सत्त्वमात्र प्रकाशित होता है। अज्ञान ही आत्मा के स्वरूपानन्दानुभव में प्रतिबन्धक होता है। अज्ञान यहाँ मुख्यतया अन्यथा ज्ञान ही है और वह मैं मनुष्यकर्ता हूँ मुझे अनेक कार्य करने हैं। उन कार्यो के फलों का भोग करना चाहिए, इत्यादिरूप होता है। उस अज्ञान द्वारा आनन्दात्मक आत्मा का मूलरूप अच्छादित होता है। इससे संसार आरम्भ होता है। इस प्रकार अज्ञान लौकिक सम्बन्ध के ग्रहण से रहता है। साधारणीकरण होने पर वह अज्ञान तत्काल निवृत्ति को प्राप्त होता है। जैसे विभावादि के विषय में साधारणीकरण होता है वैसे सहृदय का अपने विषय में भी साधारणीकरण होता है। तब अज्ञान की तत्काल निवृत्ति होती है। तब पूर्व में ही विभावादि से प्रबोधित और साधारणीकृत रति आदि स्थायी भाव चिदानन्दोपहित रस कहा जाता है। इस प्रकार विभावादि से प्रबोधित सहृदय महिमा से साधारणीकृत रति आदि स्थायी भाव ही रस है। यह अभिनवगुप्त-मम्मटादि का मत है।

जगन्नाथ के मत में तो सहृदयत्व की महिमा से विभावादि साधारण होते हैं। उनके द्वारा प्रबोधित इत्यादि स्थायीभाव भी साधारण होता है। तब साधारणीकृत द्वारा चित्तवृत्ति अपने स्थायीभाव से उपहित अपना भी साधारण सम्पादित करती है। अतः लौकिक कर्तृत्वादि सम्बन्धवरण के बिना ही रहते हैं। इस प्रकार स्वरूपप्रतिबन्ध निवृत्ति से आत्मा रत्यादि स्थायीभाव से उपहित चिदानन्दलक्षण अपने को अपना ही समझती है। उस साधारणीकृत द्वारा रति आदि संवलित अज्ञानावरणरहित आत्मा ही रस रूप में स्थित है। वेद में भी संकलित है

टिप्पणी

''रसो वै स:'', ''रसं ह्येवायं लब्धवा आनन्दी भवति'' (तैत. उप. ब्रह्मा. वल्ली) रस ही आत्मा है। वह रस अर्थात् आत्मा को प्राप्त करके आनन्दित होती है।

पाठगत प्रश्न 27.2

6. रस कौन है?
7. स्थायीभाव कितने हैं?
8. आहार्यज्ञान क्या है?
9. अज्ञान क्या है?
10. व्यभिचारिभाव कौन है?

27.5 रससूत्र विवरण में मतभेद

रससूत्र के विवरण में चार वाद प्रसिद्ध हैं - वे अभिनवभारती में उपलब्ध होते हैं। रस उत्पद्यते इति भट्टलोल्लट:। रस अनुमीयते इति श्रीशंकुक:। रसो भुज्यते इति भट्टनायक:। रस: अभिव्यज्यते इति अभिनवगुप्त। इन सब का संक्षेप में अवलोकन करते हैं।

उत्पत्तिपाद - ''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति:'' यह भरतमुनि कृत रससूत्र है। यहाँ भट्टलोल्लट ने निष्पत्ति पद का अर्थ उत्पत्ति प्रतिपादित किया है। इनके मत में विभावादि स्थायीभावादि का रस के मध्य में उत्पाद्य-उत्पादक भाव सम्बन्ध है। इसके मत में रस अनुकार्य में होता है। नट से अभिनय द्वारा उसका अनुकरण किया जाता है वह अनुकार्य है। जैसे - राम, कृष्ण इत्यादि अनुकार्य हैं। अनुकार्य में स्थित रस नट में रामत्वादि अनुसन्धन के बल से प्रतीत होता है। उससे मुख्यतया अनुकार्य रामादि में रस होता है। गौणरूप से वह रस नट में होता है। यह भट्टलोल्लट का मत है।

अनुमितिवाद - अनुमितिवाद के प्रतिपादक श्रीशंकुक है। ये भट्टलोल्लट में मत में दोष को खोजते हैं। रस: अनुकार्य रामादि में स्वीकार करते हैं, तो वह रामादि आज नहीं है। यदि है तो भी रंगमंच पर नहीं है। इसलिए अनुकार्य में रस उपयुक्त नहीं है। अत: रस अनुमित होता है, यह स्वीकार करना चाहिए। लोक में पर्वत पर दिखाई देने वाले धूम को देखकर पर्वत में आग है यह निश्चय होता है। अर्थात् समुचित कारण को समझकर आग का अनुमान किया जाता है। इसी प्रकार रामसीता आदि का अनुकर्ता नट में चुम्बनालिंगन आदि अभिनयरूप चेष्टाओं को देखकर वह-वह चेष्टानुगुण रस नट में सामाजिक अनुमिति करते हैं। यहाँ नट में रस का अनुमान करके सहृदयों को आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार श्रीशंकुक के मत में रस अनुमान से लभ्य है। इसलिए रससूत्र में निष्पत्ति पद का अर्थ अनुमिति सिद्ध करते हैं।

भुक्तिवाद - भुक्तिवाद के प्रतिष्ठापक भट्टनायक हैं। ये सर्वप्रथम श्रीशंकुक के मत में दोष खोजते हैं। यदि नट में रस स्वीकार किया जाये तो काव्यादि में सहृदयों को आनन्द कैसे हो

सकता है। काव्यादि में आनन्द यदि सहृदय का न होता है तो सहृदय काव्यादि में किसलिए प्रवृत होते हैं। नट में अनुमित रस लौकिक होता है। उसका साधरणीकरण नहीं है। इस कारण सक शृंगारिकरस प्रधान काव्य को सभ्यजनों को जुगुप्साकारक (घृणा का कारक) होगा। अनुमान पक्ष में तो हेतु व्यभिचारिभाव से होता है। यह अन्य दोष भी श्री शंकुक में मत में है। इसलिए भट्टनायक भुक्तिवाद का प्रतिपादन करते हैं। उनके मत में जो काव्य में अभिधा से काव्यार्थ बोध होता है। उसके बाद काव्य के भावकत्व व्यापार से विभावादि का साधारणीकरण होता है। उसके बाद सहृदय को सत्त्वोद्रक होता है। जो रसानुभव योग्यता को मन में निष्पादित करता है। तब चित्तविक्षेपकारक रज और तम गुण नहीं रहते। उसके बाद चिदानन्तरूपी आत्मा अपने में विश्रान्त होती है। वह विश्रान्ति रत्यादिस्थायिभाव सहित होकर भोगीकरण व्यापार से भोग करती है। इस कारण उस के मत में निष्पति का मुक्ति अर्थ है।

भट्टनायक के मत में दोष

विभावादि का साधारणीकरणार्थ को काव्य में शब्दों का ही भावकत्व व्यापार स्वीकार किया, वह उचित नहीं। भावकत्व सहृदय हृदय धर्म होता है न कि शब्दधर्म।

आत्मविश्रान्तिरूप को रस के आस्वादन के लिए भोजकत्व व्यापार स्वीकार किया है। उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि घट से आच्छादित दीप को देखने के लिए घट का अपसारणमात्र कार्य है। घटापसारण करने पर प्रज्वलित दीप स्वयं ही प्रकाशित होता है। घटापसारण के बाद दीप प्रदर्शन यह दूसरा व्यापार अवशिष्ट नहीं होता। चैतन्यरूप आत्मा के आनन्द के अनुभव में प्रतिबन्धकनिवारण जब होता है तब स्वयं को प्रकाशित करके आत्म विश्रान्ति सुख को आत्मा से ही अनुभूत हो जाता है।

भट्टनायक के मत में गुण

रस सहृदयनिष्ठ होता है यह अतीव समुचित है। रस प्रक्रिया में प्रधान कीलकस्थान विभावादि का साधारणीकरण है। उसके निरुपण में भट्टनायक का महान योगदान है।

अभिव्यक्तिवाद - अभिव्यक्तिवाद के प्रतिष्ठापक अभिनवगुप्त है। आनन्दवर्धन का मत था कि काव्य और रस के मध्य व्यंग्य-व्यंजकभाव है। इसका अच्छी प्रकार से स्पष्टीकरण अभिनवगुप्त ने की है। इनके मत में रस निष्पत्ति का अर्थ रस अभिव्यक्त होता है। काव्य या नाटक से विभावादि की उपस्थापना होती है। सहृदय की महिमा से विभावादि का साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण हुए विभावादि से सहृदय के रति आदि स्थायिभावों का साधारणीकरणपूर्वक ही प्रबोधन (जागरण) होता है। साधारणीकरण हुए स्थायिभावों में प्रमाता भी साधारण होता है अर्थात् अज्ञान की तत्काल निवृत्ति होती है। अज्ञान ही यहाँ लौकिक सम्बन्धरूप मैं कर्ता, ये मेरे हैं, ये मेरे नहीं, यह अन्यों का है आदि लक्षित होते हैं। जिससे प्रमाता असाधारण और परिमित होता है। उस अज्ञान की तत्काल निवृत्ति में सम्बन्धवरण रहित रति आदि स्थायिभाव आत्मस्वरूप चिदानन्द से विषयीकृत होता है। इस प्रकार साधारणीकृत चिदानन्द विषयीकृत स्थायीभाव अभिव्यक्त होते हैं और वह आनन्दरूपी रस होता है।

टिप्पणी

रस अभिव्यक्तिवाद से रससिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ। इसको जगन्नाथ ने चरमपरिष्कार किया। अभिनवगुप्त-मम्मटादि के मत में चिदानन्दसंवलित अज्ञानावरणरहित स्थायीभाव रस होता है। जगन्नाथ के मत में रत्यादिस्थायीभाव सहित किन्तु अज्ञानावरण सहित आत्मा ही रस होता है। अन्य प्रक्रिया जगन्नाथ में मत में अभिनवगुप्त आदि के समान है।

पाठगत प्रश्न 27.3

11. रस अनुकार्य में है, यह किसने कहा?
12. अनुकर्ता में रस है, यह किसका मत है?
13. भोगीकरण व्यापार कहाँ स्वीकृत है?
14. साधारणीकरण को सर्वप्रथम किसने निरुपित किया?
15. अभिव्यक्तिवाद के प्रतिष्ठापक कौन है?
16. आनन्दवर्धन के मत में रस कैसा है?
17. अभिनवगुप्त के मत में भोगीकरण कहाँ नहीं है?
18. अभिनवगुप्त के मत में साधारणीकरण कैसे सिद्ध होता है?

27.6 करुणरस के विषय में आक्षेप और समाधान

शोक स्थायीभावात्मक करुण रस होता है। शोक जिसका स्थायिभाव हो तो वह आनन्दमय नहीं हो सकता। रस रस्यते या आस्वाद्यते परिभाषा से रस पद व्यवहार करुणयुक्त नहीं होता, यह आक्षेप किया जाता है। उसका समाधान करते हैं कि करुण आनन्दमयी है इसके लिए सहृदयों का अनुभव प्रमाण है। यदि करुणरस दु:खरूपी करुणरस प्रधान रामायणादि काव्य लोक में दु:ख के कारण होते, किन्तु उन काव्यों में लोक की इच्छापूर्वक प्रवृत्ति देखी गई है। अत: करुण आनन्दरूपी ही है। रस प्रक्रिया में साधारणीकरण स्वीकार करने से करुण दु:खरूपी नहीं है यह सिद्ध होता है।

27.7 रसों का क्रम

शृंगार हास्य करुणरौद्रवीरभयानका:।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसा: शान्तस्तथा पुन:॥ सा.द. 3/76

यहाँ रसो का क्रम विद्यमान हैं। भरतमुनि भी इस क्रम को कहते हैं। शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त ये नौ रस क्रमश: है। अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में इनके क्रम के महत्व का वर्णन किया है।

टिप्पणी

उनमें से रति सभी प्राणियों की स्वाभाविकी और बलवती प्रिया होती हैं उससे सर्वप्रथम रतिस्थायिभावक शृंगार है। वह काम प्रधान है। हास्य सर्वदा शृंगार अनुरागी होती है। इसलिए वह द्वितीय है। सुख का विरोधी शोक:। इसलिए शोकस्थायीभाव करुण तीसरा है। करुण का निमित्तभूत क्रोध है इसलिए क्रोध स्थायीभावात्मक रौद्ररस चौथा है। रौद्र अर्थप्रधान अर्थात् जीवन के साधनभूत द्रव्यों के कारण पैदा होता है। जीवन साधनभूत सभी द्रव्य अर्थ कहे गये है। काम और अर्थ का मूल धर्म है। इसलिए धर्मप्रधान वीररस पांचवा है। उत्साह स्थायिभावात्मक वह भीतों को अभय प्रदान करता है। अत: वीर के बाद भयानक है। भयानक रस का विभावादि के साधारण्य बीभत्स का होता है। इसलिए भयानक के बाद बीभत्स रस होता है। वीररस का अन्तिम परिणाम विस्मय होता है। इसलिए अन्त में विस्मय स्थायिभाव अद्‌भुत रस है। इस प्रकार आठ रस धर्मार्थकामरूप त्रिवर्ग के प्रतिनिधि रूप से व्यवस्थापित है। त्रिवर्ग तो प्रवृत्ति धर्म से सिद्ध होते हैं। उसके विरूद्ध निवृत्ति धर्म होता है। उससे अपवर्ग अर्थात् मोक्ष सिद्ध होता है। इसलिए सबसे अन्त में मोक्ष फल दाता शान्त रस है।

27.8 शान्तरस का महत्त्व

अलंकारशास्त्र में शान्तरस का परम उच्च स्थान है। शान्तरस के विषय में भरतमुनि ने कहा है – ''अथ शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्ष प्रवर्तक:। स तत्त्वज्ञान वैराग्य आशयशुद्ध्यादिभि. भावै: समुत्पद्यते।'' अर्थात् शमस्थायिभाव से शान्तरस परिपक्व होता है। शम भाव अपने आत्मविवेकरूप, तत्व ज्ञान और वैराग्य से सिद्ध होता है। शम शान्ति या उपशम को कहते हैं। अर्थात् संसार में जो कुछ पदार्थ द्वारा प्राप्त हुए सुख या दु:ख से मन में यदि क्षोभ नहीं होता तो वह शम भाव है। संसार और आत्मा का यथार्थबोध तत्त्वज्ञान कहा जाता है। तत्त्वज्ञान की सिद्धि और वैराग्य से संसार में इष्ट की प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य शेष नहीं रहते हैं। इस प्रकार वैराग्य का अवलम्बन करके आत्मज्ञान रूप ब्रह्मानन्द आत्मा में प्राप्ति करने योग्य होती है। शम स्थायिभात्मक शान्तरस नित्यानित्यविवेक, वैराग्य, ध्यान, ब्रह्मचिन्तन आदि भावों से सिद्ध मोक्ष के प्रति प्रेरणा पैदा होती है। इसलिए शुक-शुक्राचार्यादि के जीवनचरित को मुमुक्ष भी आस्वादन करते हैं। जैसे आत्मा में सभी लोक लीन होते हैं उसी प्रकार सभी भाव अर्थात् रस शान्त में लीन होते हैं। भरतमुनि ने कहा है –

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भाव: प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये तु शान्त एवं प्रलीयते॥

अर्थात् रति, हास, शोकादि निमित्तों के आश्रय लेकर शृंगार हास्य करुणादि रस अभिव्यंजित होते हैं। पुन: रतिहासादि निमित्तो के अभाव में वे शान्त में ही लीन होते हैं। इसलिए कहते हैं –

टिप्पणी

भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः॥

अर्थात् शृंगारादि आठ रस शान्त से उत्पन्न होते है जैसे आत्मा से जगत् के भाव उत्पन्न होते हैं। जैसे वेदान्तियों के परमात्मा उत्पन्न नहीं होता वैसे शान्त रस उत्पन्न नहीं होता। अतः वह प्रकृति कहा जाता है।

रसतालिका

रस	स्थायीभाव	व्यभिचारिभाव	वर्ण	देवता
शृंगार	रति	लज्जा, हास, चिन्ता, कुतुहल	श्याम	विष्णु
हास्य	हास	निद्रा, आलस्य आदि	श्वेत	प्रमथगण
करुण	शोक	मोह, विषाद, ग्लानि, स्मृति	कपोतवर्ण	यम
रौद्र	क्रोध	मद, अमर्ष, मोह आदि	रक्तवर्ण	रूद्र
वीर	उत्साह	धृति, मति, गर्व, स्मृति आदि	हेम, गौरवर्ण	इन्द्र
भयानक	भय	भ्रान्ति, शंका, अवस्मार आदि	कृष्ण	काल
वीभत्स	जुगुप्सा	मोह, आवेग, अवस्मार, व्याधि	नील	महाकाल
अद्भुतः	विस्मयः	वितर्क, भ्रान्ति, आवेग, हर्ष आदि	पीत	ब्रह्मा
शान्त	शम	निर्वेद, धृति, मति, दया आदि	अतिधवल	नारायण

पाठगत प्रश्न 27.4

19. हास्य किसका अनुगम करता है?
20. धर्मप्रधान रस कौन है?
21. करुण के बाद रौद्ररस कहाँ से आता है?
22. मोक्ष प्रवर्तक रस कौन है?
23. शान्त का स्थायीभाव क्या है?
24. विकृति रस कितने है?
25. शान्तरस कैसे प्रकृति रस है?
26. भाव कब शान्त में विलीन होते है?

पाठसार

काव्य और काव्यशास्त्र का परम उच्च विषय रस होता है। रस के अनुभव से कवि काव्य को

रचते हैं। उस काव्य से सहृदय रस का अनुभव करते हैं। काव्य के शब्द अर्थ अलंकारादि सभी अंश रस में परिपूर्ण होते हैं। रस अपने में समाप्त है। वह काव्यात्मा है। उसकी निष्पत्ति भरतमुनि ने निरूपित की। भरत का सरसूत्र है – विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस निष्पत्तिः। काव्य या नाटक से समर्पित विभावादि सहृदयता के बल से साधारण होते हैं। साधारणीकरण से वे काव्य के पदार्थ लोकोत्तर होते हैं। इस प्रकार साधारण और अलौकिक होते हुए विभावादि सहृदय जनों के रति आदि स्थायीभावों को उद्‌बुध करते हैं। तब रत्यादि स्थायीभाव भी साधारण होकर जागरित होता है। साधारणीकरण के बल से लौकिक सम्बन्ध वहाँ प्रतीत नहीं होते। उसके बाद आत्मानन्द का प्रतिबन्धक अज्ञान तत्काल निवृत्त हो जाता है। तब प्रतिबन्ध का भाव से स्वयं प्रकाशशील आनन्दरूपी आत्मा से विभावादि से अभिव्यक्त स्थायीभाव प्रकाशित होता है। साक्षात् आत्मा से प्रकाश होता है। अतः स्थायीभाव आनन्दमय होता है। इस प्रकार विभावादि से अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव रस है। यह अभिनवगुप्त एवं मम्मटादि का मत है। जगन्नाथ ने तो इत्यादि स्थायिभाव मुक्त आवरण रहित आत्मा को ही रस कहा है। वहाँ प्रमाण श्रुति वेद है। ''रसो वै रसः, रसं ह्येवाय लब्धवा आनन्दी भवति।''

रस व्याख्यान में चार वाद् प्रसिद्धः है। वे क्रमशः है – उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद, अभिव्यक्तिवाद। उन वादों के वक्ता क्रमशः भट्टलोलट, श्रीशंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त है। स्थायीभाव नौ हैं उनके रस भी नौ है। उन में शृंगार से अद्‌भुत पर्यन्त आठ रस धर्मार्थकाम के प्रतिनिधिरूप है। शान्त मोक्ष का प्रतिनिधि होता है।

आपने क्या सीखा

- रस का सामान्य परिचय।
- रससूत्र, रस का समन्वय और रसानुभव को जाना।
- साधारणीकरण सिद्धांत को जाना।
- चार वेदों को जाना।
- शान्त रस की महिमा को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. रससूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. साधारणीकरण का निरुपण कीजिए।
3. काव्य में पदार्थ का लोकोत्तरत्व कैसे सिद्ध होता है?
4. भट्टनायक मत में गुणदोषों की आलोचना कीजिए।
5. अभिव्यक्तिवाद को स्पष्ट कीजिए।

टिप्पणी

6. करुण आनन्दमय रूप है, स्पष्ट कीजिए।

7. शान्त रस के महत्व का प्रतिपादन कीजिए।

8. उत्पत्तिवाद और अनुमितिवाद में कौन से दोष हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

27.1

1. रस।

2. जिससे रत्यादि स्थायी भाव प्रबोधित होते है वह विभाव है।

3. छठे अध्याय में।

4. रस के प्रकाशन के लिए।

5. रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।

27.2

6. विभावादिभिः अभिव्यक्तः इत्यादिः स्थायिभावो रसः।

7. नव (नौ)।

8. यत्किञ्चित् प्रयोजनव शात् विवेकपूर्विका अतस्मिन् तद्बुद्धिः।

9. मैं कर्त्ता मेरे कार्य है इत्यादि अन्यथा ग्रहण को अज्ञान कहते हैं।

10. व्यभिचरणशील अर्थात् अस्थिरस्वभाव व्यभिचारिभाव।

27.3

11. भट्टलोल्लटः।

12. श्री शंकुक।

13. रसानुभवार्थ को।

14. भटनायक ने।

15. अभिनवगुप्त ने।

16. रस अभिव्यंग्य।

टिप्पणी

17. रस स्वप्रकाश के कारण।

18. सहृदयत्व की महिमा से।

27.4

19. शृंगार का अनुगम।

20. वीर रस।

21. शोक निमित्त क्रोध।

22. शान्त।

23. शम।

24. आठ।

25. सभी रस शान्त में लीन होते हैं।

26. निमित्त के नष्ट होने पर शान्त में लीन होते हैं।

अवलोकनीय ग्रन्थ

- साहित्यदर्पण – तृतीयाध्याय
- काव्यप्रकाश – तृतीयाध्याय
- रसगंगाधर – प्रथमानन
- अभिनवभारती – षष्ठाध्याय